|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 11: विश्वरूपदर्शनयोग

3/5 (श्लोक 23-34), रविवार, 22 मार्च 2026

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/VlV1RQdajs0

श्रीभगवान् का विश्वरूप और अर्जुन की जिज्ञासा

देशभक्ति गीत, श्रीहनुमान चालीसा पाठ तथा दीप प्रज्वलन के साथ आज का सत्र आरम्भ हुआ। इस विवेचन में श्रीमद्भगवद्गीता के **विश्वरूपदर्शनयोग** नामक ग्यारहवें अध्याय के श्लोक क्रमाङ्क तेईस से चौंतीस तक का विश्लेषण किया गया।

पूज्य सद्गुरु स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के श्रीचरणों में वन्दन तथा सभी गीता-प्रेमी व गीता-साधकों का हृदय से अभिवादन करते हुए सत्र विवेचन की ओर अग्रसर हुआ।

अर्जुन की विश्वरूप-दर्शन की लालसा

अर्जुन ने **श्रीभगवान्** के विषय में ज्ञान प्राप्त किया, राजविद्या और राजगुह्य योग को समझा तथा उस परमात्मा के विषय में जाना जिनका दर्शन प्रत्येक जीव करना चाहता है। वे परमात्मा सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में व्याप्त हैं यह जानने के पश्चात् उन विशेष अनुभूतियों के स्थानों को जानने की अर्जुन की इच्छा (Desire) जागृत हुई। अर्जुन ने श्रीभगवान् के सम्मुख अपनी यह इच्छा प्रकट की।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को अपनी अनेक विभूतियाँ बतायीं। समस्त विभूतियों को जानने के पश्चात् अर्जुन के मन में और अधिक लालसा उत्पन्न हो गई। अर्जुन के मन में यह प्रश्न उठा कि जब श्रीभगवान् इतने प्रसन्न हैं तो क्या वे उन्हें अपने विश्वरूप का भी दर्शन करा सकते हैं? क्या वे उस दर्शन के निमित्त योग्य (Eligible) हैं? अर्जुन ने श्रीभगवान् से प्रार्थना की कि यदि वे इस दर्शन के योग्य हैं तो उन्हें वह रूप दिखाया जाए जो सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किए हुए है।

श्रीभगवान् के अर्जुन के प्रति प्रेम से सभी परिचित हैं। श्रीभगवान् ने तत्काल वह विनती स्वीकार कर ली और अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराया।

जब अर्जुन इस विश्वरूप का अवलोकन कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में ही समस्त विश्व और सम्पूर्ण संसार समाहित है। समस्त देव, देवतागण, ऋषि, मुनिगण, हिंसक पशु और पक्षी आदि सब कुछ उसी एक शरीर में विद्यमान थे। अर्जुन को वहाँ असङ्ख्य मुख, असङ्ख्य नेत्र, असङ्ख्य उदर और असङ्ख्य हस्त-पाद दिखाई दे रहे थे। अर्जुन उस अत्यन्त भयङ्कर रूप को देखने लगे और उस रूप को देखकर उनके मन में जो भाव जागृत हुए उन्हें वह प्रकट कर रहे हैं।

अर्जुन की भूमिका में प्रविष्ट होकर भक्त भी इस विश्वरूप का साक्षात्कार करना चाहते हैं। जब श्रीभगवान् के साथ पूर्ण एकसूत्रता

सिद्ध (Achieve) होगी तब होगी किन्तु मन ही मन अर्जुन के साथ तादात्म्य स्थापित कर यदि इस अध्याय के अध्ययन का प्रयास किया जाए तो उस विश्वरूप के दर्शन की सूक्ष्म अनुभूति के कुछ अंश प्राप्त हो सकते हैं।

विश्वरूप दर्शन और देवसमूहों का विस्मय

श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि केवल वे ही नहीं अपितु समस्त दिव्य योनियाँ और देवगण भी उस स्वरूप को देखकर चकित हैं।

"रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
(श्रीमद्भगवद्गीता, 11.22)

इस श्लोक के माध्यम से अर्जुन स्पष्ट करते हैं कि गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धों के जो समूह हैं वे सभी विस्मित होकर श्रीभगवान् को देख रहे हैं और आश्चर्यचकित हो रहे हैं।

अर्जुन की दृष्टि और व्यापक विस्मय

यहाँ एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पक्ष उभरकर आता है कि वास्तव में विस्मित कौन हुआ है? यद्यपि विश्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन केवल अर्जुन कर रहे हैं तथापि अर्जुन को ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जो दृश्य वे देख रहे हैं, उसे अन्य सभी भी देख रहे होंगे। उन्हें आभास होता है कि चराचर जगत् के समस्त प्राणी और दिव्य शक्तियाँ उस अनन्त रूप को देखकर समान रूप से विस्मयचकित (Astonished/Amazed) हैं।

तत्पश्चात् अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए उनके उस महान् रूप के प्रभाव का वर्णन करते हैं। वे वर्णन करते हैं कि उस असीम स्वरूप को देखकर अन्य शक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और उनके स्वयं के अन्तःकरण में किस प्रकार के भाव उमड़ रहे हैं।

11.23

रूपं (म्) महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं(म्),
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं(म्) बहुदंष्ट्राकरालं(न्),
दृष्ट्वा लोकाः(फ्) प्रव्यथितास्तथाहम्॥11.23॥

हे महाबाहो! आपके बहुत मुखों और नेत्रोंवाले, बहुत भुजाओं, जंघाओं और चरणोंवाले, बहुत उदरोंवाले (और) बहुत विकराल दाढ़ोंवाले महान् रूपको देखकर सब प्राणी व्यथित हो रहे हैं तथा मैं भी (व्यथित हो रहा हूँ)।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं कि श्रीभगवान्! मैं आपका यह कैसा रूप देख रहा हूँ?

- **'रूपं महत्ते**-' आपके इस महान् रूप में,
- **'बहुवक्त्र**- अर्थात् अनेक वक्त्र यानी मुख, चेहरे
- **नेत्रम्-** अनेक आँखें
- **'बहुबाहु'**-असङ्ख्य, अनेक बाहु
- **'ऊरु'**- अर्थात् जङ्घाएँ
- **'पादम्'**- अर्थात् पाँव
- **"बहुदरम्"**- असंख्य उदर
- **"बहुदंष्ट्राकरालम्"**- मुख में अत्यन्त विकराल दन्त-पंक्तियाँ

अर्थात् आपके अनेक मुखों में अनेक अङ्ग दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह आपका कैसा अद्भुत और विस्मयकारी रूप है? मेरी बुद्धि इसे ग्रहण करने में असमर्थ है। एक मुख नहीं अपितु आपके प्रत्येक मुख में वे भयावह दाढ़ें ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो आपने समस्त विश्व को निगलने के लिए ही यह रूप धारण किया है। आपने सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर लिया है।

- **'दृष्ट्वा"**- आपके इस अलौकिक और विशाल रूप को देखकर
- **'लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्'**- समस्त लोक भय से व्याकुल हो रहे हैं और उनके साथ मैं भी अत्यन्त व्यथित हो रहा हूँ।
- **'प्रव्यथिता'**- अर्थात् प्रकर्षेण व्यथिता

विश्वरूप दर्शन और अर्जुन की व्याकुलता

विश्वरूप के दर्शन के समय अर्जुन स्वयं को साक्षात् व्याकुल अनुभव करते हैं तथापि उन्हें यह प्रतीति होती है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् भी इसी दृश्य को देख रहा होगा। इसी कारण अर्जुन को यह आभास होता है कि केवल वे ही नहीं अपितु सारा संसार व्याकुल हो गया है।

'**दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्**' के माध्यम से वे स्पष्ट करते हैं कि समस्त लोक व्यथित हैं और उन्हीं की भाँति मैं (अर्जुन) भी उद्विग्न हूँ।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज इस मनोवैज्ञानिक स्थिति को बड़ी सूक्ष्मता से स्पष्ट करते हैं- **''लोक भीति हें निमित्तमात्र। वास्तविक।''** अर्थात् "लोग भयभीत हैं"। यह तो मात्र एक निमित्त है यथार्थ में अर्जुन स्वयं भयाक्रान्त हैं।

श्रीभगवान् की विकराल **"दन्तपङ्क्तियाँ"** और **"व्यात्तास्यम्"** (विस्तृत मुख) को देखकर अर्जुन जैसा वीर भी भयभीत हो उठे हैं।

अर्जुन का शौर्य और किरात-प्रसङ्ग

वस्तुतः अर्जुन की प्रकृति भयभीत होने वाली नहीं है। वे एक ऐसे श्रेष्ठ योद्धा हैं जिनसे साक्षात् मृत्यु भी भय मानती है। इसका प्रमाण शिव-अर्जुन के **"किरात"** युद्ध के प्रसङ्ग में मिलता है।

अर्जुन का शौर्य और किरात-वेशी शिव की परीक्षा

क्या वास्तव में अर्जुन जैसे महान योद्धा भयभीत होने वाले हैं? कदापि नहीं। अर्जुन वह श्रेष्ठ धनुर्धर हैं जिनसे साक्षात् मृत्यु भी भय खाती है।

महाभारत काल का एक सुप्रसिद्ध प्रसङ्ग है। जब भगवान् शिव अर्जुन की तपस्या और वीरता की परीक्षा लेने के लिए 'किरात' नामक भिल्ल (वनवासी) का रूप धरकर प्रकट हुए। एक वराह (सूअर) के शिकार को लेकर दोनों के मध्य विवाद हुआ। किरात ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। अर्जुन ने अपने समस्त दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया किन्तु वे यह देखकर चकित रह गये कि उस साधारण से दिखने वाले भिल्ल के पास उनके हर बाण का उत्तर था। अर्जुन के अमोघ शस्त्र भी उस किरात के सामने निष्प्रभावी सिद्ध हो रहे थे।

इसी सङ्घर्ष के मध्य सन्ध्या काल उपस्थित हुआ। नियमनिष्ठ अर्जुन ने किरात से कहा,"अभी युद्ध विराम करो, मेरी सन्ध्या-वन्दना और पूजन का समय हो गया है। पूजा के पश्चात हम पुनः युद्ध करेंगे।"

अर्जुन ने पार्थिव शिवलिङ्ग का निर्माण किया और पूर्ण श्रद्धा से उन पर ग्यारह पुष्प अर्पित किए। यहाँ एक अलौकिक दृश्य घटित हुआ। अर्जुन ने देखा कि वे जो भी पुष्प शिवलिङ्ग पर चढ़ा रहे थे, वे अदृश्य होकर सीधे उस किरात (भिल्ल) के मस्तक पर जाकर गिर रहे थे। अर्जुन तत्क्षण समझ गए कि उनके सामने खड़ा वह साधारण वनवासी कोई और नहीं अपितु स्वयं उनके आराध्य **भगवान् शङ्कर** हैं जो उनकी परीक्षा लेने आए थे।

जिस अर्जुन ने साक्षात् शिव के सम्मुख भी शस्त्र उठाते समय किञ्चित् मात्र भी भय का अनुभव नहीं किया, वह अर्जुन आज कुरुक्षेत्र की रणभूमि में भगवान् के विराट् रूप को देखकर **'भीत-भीतः'** (अत्यन्त भयभीत) हो रहे हैं।

यह उनके साहस की कमी नहीं अपितु ईश्वर के उस अनन्त ऐश्वर्य और काल के विकराल स्वरूप के प्रति उपजी **'श्रद्धा-मिश्रित**

व्याकुलता' है।

ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन की योग्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं।

"ज्या मज संहाररुद्र वासिपे, ज्या मजभेणें मृत्यु लपे, तो मी एथें अहाळबाहळीं कांपें, ऐसें तुवां केलें ॥ ३५१॥

अर्थात् जिसकी शक्ति के भय से मृत्यु भी छिप जाये वे अर्जुन आज इस विराट् रूप को देखकर सञ्ज्ञाशून्य हो रहे हैं।

अर्जुन कहते हैं-

परि नवल बापा हे महामारी । इया नाम विश्वरूप जरी ।
हे भ्यासुरपणें हारी । भयासि आणी ॥ 11.352॥

क्या इसे ही विश्वरूप कहते हैं? यह तो किसी **"महामारी"** के समान भयावह है जो सबको निगलने के लिए उद्यत है।

अन्ततः अर्जुन अपनी पूर्ववर्ती जिज्ञासा को स्मरण करते हुए स्वीकार करते हैं कि उनके मन में विश्वरूप देखने की जो उत्कट अभिलाषा थी, वह अब भयार्त अवस्था में परिवर्तित हो गई है। वे **"डोहाळे"** (गर्भवती स्त्री की विशेष खाने की इच्छा) का दृष्टान्त देते हुए कहते हैं—

देवा विश्वरूप पहावयाचे डोहळे । केले तिये पावलों प्रतिफळें ।
बापा देखिलासि आतां डोळे । निवावे तैसे निवाले ॥
(ज्ञानेश्वरी, 11.366)''

"मेरी वह अभिलाषा अब पूर्ण हो गई है, अब यह भयङ्कर रूप मुझसे देखा नहीं जाता। अतः हे भगवान्, आप अपने इस विकराल रूप का उपसंहार करें।"

11.24

नभःस्पृशं(न्) दीप्तमनेकवर्णं(म्),
व्यात्ताननं(न्) दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां(म्) प्रव्यथितान्तरात्मा,
धृतिं(न्) न विन्दामि शमं(ञ्) च विष्णो॥11.24॥

क्योंकि हे विष्णो! (आपके) देदीप्यमान अनेक वर्ण हैं, आप आकाशको स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् सब तरफसे बहुत बड़े हैं, आपका मुख फैला हुआ है, आपके नेत्र प्रदीप्त और विशाल हैं। (ऐसे) आपको देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला (मैं) धैर्य और शान्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ।

विवेचन- भारतीय वायुसेना का आदर्श वाक्य और श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान् श्रीकृष्ण के विश्वरूप का वर्णन करते हुए अर्जुन जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं वह न केवल आध्यात्मिक है अपितु आधुनिक भारत के शौर्य का आधार भी है।

अर्जुन **"नभःस्पृशम्"** (आकाश को स्पर्श करने वाले) और **"दीप्तम्"** (अत्यन्त तेजस्वी, प्रकाशमान) शब्दों का प्रयोग करते हैं। उल्लेखनीय है कि **'नभःस्पृशं दीप्तम्'** हमारी भारतीय वायुसेना (Indian Air Force) का 'बोधवाक्य' (Motto) भी है। जिस प्रकार नौसेना का आदर्श वाक्य **'शं नो वरुणः'** है, उसी प्रकार वायुसेना ने भगवद्गीता के इसी एकादश अध्याय से अपना प्रेरणा-वाक्य लिया है। वायुसेना के विमान आकाश की ऊँचाइयों को स्पर्श करने वाले और शत्रुओं के लिए प्रचण्ड तेजस्वी हैं अतः यह विशेषण उनके लिए पूर्णतः उपयुक्त है।

विश्वरूप की विराटता और विकरालता

अर्जुन कहते हैं—
"नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्"।

हे विष्णु! मैं आकाश को स्पर्श करते हुए, देदीप्यमान, अनेक वर्णों (रङ्गों) से युक्त और फैले हुए मुख वाले आपको देख रहा हूँ। आपके नेत्र विशाल और प्रकाशमान हैं। आपके इन **"व्यात्ताननम्"** अर्थात् खुले हुए विकराल मुखों में भयङ्कर **"दन्तपङ्क्तियाँ"** दृष्टिगोचर हो रही हैं।

विश्वरूप के इस दृश्य को देखकर अर्जुन अपनी मानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए स्वीकार करते हैं—

'दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो'।

आपको इस रूप में देखकर मेरी अन्तरात्मा अत्यन्त व्यथित हो गई है। मेरा धैर्य समाप्त हो चुका है और चित्त में कहीं भी शान्ति का अनुभव नहीं हो रहा है। अर्जुन आत्म-चिन्तन करते हैं कि उन्होंने ऐसी उत्कट इच्छा प्रकट ही क्यों की? उन्हें लगा था कि विश्वरूप के दर्शन से आत्मिक शान्ति और धैर्य प्राप्त होगा किन्तु परिणाम इसके सर्वथा विपरीत हुआ।

नृसिंह अवतार का दृष्टान्त
अर्जुन की इस भयाक्रान्त अवस्था को समझने के लिए हिरण्यकशिपु और भक्त प्रह्लाद का प्रसङ्ग प्रासङ्गिक है।

जब हिरण्यकशिपु के संशय और अहङ्कार पर प्रह्लाद ने खम्भे में भी नारायण की उपस्थिति बताई तब साक्षात् भगवान् **"नरसिंह"** के रूप में प्रकट हुए। एक अकेले भगवान् नृसिंह देव के विकराल रूप, उनके तीक्ष्ण नखों और दन्त-पङ्क्तियों को देखकर हिरण्यकशिपु जैसा बलशाली असुर भी सञ्ज्ञाशून्य हो गया था। अर्जुन यहाँ एक नहीं अपितु सहस्रों ऐसे विकराल मुख देख रहे हैं जो मानो सम्पूर्ण सृष्टि का भक्षण करने के लिए उद्यत हों। यही कारण है कि अर्जुन व्याकुल होकर पुकारते हैं—

"धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो"

"हे विष्णु! मेरा धैर्य लुप्त हो गया है, मुझे कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है।"

11.25

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि,
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म,
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥11.25॥

आपके प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित और दाढ़ोंके कारण विकराल (भयानक) मुखोंको देखकर (मुझे) न तो दिशाओंका ज्ञान हो रहा है और न शान्ति ही मिल रही है। (इसलिये) हे देवेश! हे जगन्निवास! (आप) प्रसन्न होइये।

विवेचन- अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के मुखों की भयावहता का वर्णन करते हुए कहते हैं— **'दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि'**। हे **"विष्णु"**! आपके मुख अत्यन्त विकराल और भयङ्कर दाढ़ों वाले हैं।

इन मुखों की दीप्ति सामान्य नहीं है अपितु वे **"कालानलसन्निभानि"** हैं, अर्थात् वे प्रलयकाल की अग्नि (कालाग्नि) के समान प्रज्वलित दिखाई दे रहे हैं।

कालाग्नि का स्वरूप और प्रलय का बोध

"कालाग्नि" शब्द की व्याख्या इस प्रकार समझते हैं कि जिस प्रकार दावानल (वन की अग्नि) सम्मुख आने वाली प्रत्येक वस्तु को

निगलकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार श्रीभगवान् के ये मुख भी प्रलयकारी प्रतीत हो रहे हैं।

यहाँ **'काल'** शब्द के दो अर्थ ध्वनित होते हैं— 'समय' और 'मृत्यु' या 'प्रलय'। जब अग्नि रौद्र रूप धारण कर सब कुछ भस्मसात् करने लगती है तो उसे कालाग्नि कहा जाता है। अर्जुन को श्रीभगवान् के अनगिनत मुखों से यही प्रलयङ्कारी अग्नि निकलती हुई प्रतीत हो रही है।

विश्वरूप के इस प्रज्वलित और भयावह स्वरूप को देखकर अर्जुन की चेतना लुप्त होने लगती है। उनके अन्दर सञ्ज्ञाशून्यता और शान्ति का अभाव होने लगता है। वे कहते हैं-

'दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास॥'

अर्जुन स्वीकार करते हैं कि इन प्रज्वलित मुखों को देखकर वे **"दिशो न जाने"** अर्थात् दिशाभ्रम की स्थिति में आ गए हैं। उन्हें पूर्व, पश्चिम या उत्तर-दक्षिण का कोई ज्ञान शेष नहीं रहा है।

इस विकरालता के मध्य उन्हें न तो **"शर्म"** (सुख) मिल रहा है और न ही मानसिक शान्ति। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं भी इस अग्नि में भस्म हो जाएँगे। अतः वे आर्त भाव से प्रार्थना करते हैं— "हे देवेश, हे जगन्निवास! मुझ पर प्रसन्न होइए और अपने इस रूप का उपसंहार कीजिए"।

"श्रीभगवान्" के विश्वरूप दर्शन का वास्तविक अर्थ है—संसार की समस्त घटनाओं को परमात्मा की ही लीला के रूप में स्वीकार करना।

इस तथ्य को आधुनिक युद्धों के उदाहरण से समझ सकते हैं कि वर्तमान समय में हम युद्ध की विभीषिका के साक्षी बन रहे हैं जैसे **"अमेरिका"** और **"ईरान"** के मध्य चल रहा सङ्घर्ष। मिसाइलों के प्रहार से विशाल भवन क्षण भर में धराशायी हो रहे हैं और उन मलबों के नीचे न जाने कितने जीव काल कवलित हो रहे हैं। जिस विनाश की हम कल्पना तक नहीं कर सकते वह साक्षात् घटित हो रहा है।

श्रीभगवान् का कालरूप और अर्जुन की अनुभूति

अर्जुन के सम्मुख प्रकट **"श्रीभगवान्"** का यह रूप वस्तुतः उनका **'कालरूप'** है। अर्जुन देख रहे हैं कि सब कुछ उनकी आँखों के सामने समाप्त हो रहा है। यह दृश्य वैसा ही भयावह है जैसा आज के युद्धों में दिखाई देता है। अर्जुन को आभास हो रहा है कि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परमात्मा के काल-चक्र में विलीन हो रहा है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भी आगे घोषणा करते हैं कि वे लोक-संहार करने वाला बढ़ा हुआ **'काल'** ही हैं। अर्जुन इसी सत्य का साक्षात्कार कर रहे हैं कि सृजन और संहार दोनों ही उस **"परमात्मा"** की इच्छा का भाग हैं।

जिस प्रकार आधुनिक युद्ध में सब कुछ एक क्षण में समाप्त हो जाता है उसी प्रकार अर्जुन श्रीभगवान् के मुखों में सम्पूर्ण विश्व को भस्म होते हुए देख रहे हैं।

प्रसीद देवेश जगन्निवास-शरणागति और शान्ति की याचना

विश्वरूप की भयावहता और कालानल सदृश मुखों को देखकर व्याकुल अर्जुन अब **"श्रीभगवान्"** से आर्त भाव से प्रार्थना कर रहे हैं। अर्जुन की स्थिति उस भक्त की भाँति है जो भय के अतिरेक में अपने आराध्य के चरणों में पूर्णतः समर्पित हो जाता है। अर्जुन पुकारते हैं-

'प्रसीद देवेश जगन्निवास॥'

प्रसीद और शान्ति की याचना

अर्जुन **"प्रसीद"** शब्द के माध्यम से श्रीभगवान् से प्रसन्न होने और अनुग्रह करने की विनती कर रहे हैं। वे बारम्बार प्रार्थना करते हैं— "हे भगवान्, आप शान्त हो जाइए। मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे वह मानसिक शान्ति प्रदान कीजिए जो इस विकराल रूप को देखकर लुप्त हो गई है।"

अर्जुन की यह प्रार्थना उनके आन्तरिक भय और श्रीभगवान् की असीम शक्ति के प्रति उनके समर्पण को प्रदर्शित करती है। वे श्रीभगवान् से इस प्रलयङ्कारी दृश्य के उपसंहार और अपने सौम्य रूप में पुनः दर्शन देने की मौन याचना कर रहे हैं।

अर्जुन के सम्बोधन में सार्थकता है। वे यहाँ श्रीभगवान् को **"देवेश"** और **"जगन्निवास"** जैसे विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।

- **"देवेश"**- अर्थात् आप देवताओं के भी ईश (स्वामी) हैं। जब चराचर जगत् के रक्षक स्वयं संहारक रूप में प्रकट हों तब केवल उनकी शरणागति ही एकमात्र मार्ग शेष रह जाती है।
- **"जगन्निवास"**- अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का निवास स्थान आप ही हैं। जो सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर समाए हुए हैं वही इस संहारकारी दृश्य से सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं।

11.26

अमी च त्वां(न्) धृतराष्ट्रस्य पुत्राः(स्),
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः(स्) सूतपुत्रस्तथासौ,
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥11.26॥

हमारे पक्षके मुख्य-मुख्य योद्धाओंके सहित भीष्म, द्रोण और वह कर्ण भी आपमें (प्रविष्ट हो रहे हैं)। राजाओंके समुदायोंके सहित धृतराष्ट्रके वे ही सब के सब पुत्र,

11.27

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति,
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु,
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥11.27॥

आपके विकराल दाढ़ोंके कारण भयंकर मुखोंमें बड़ी तेजीसे प्रविष्ट हो रहे हैं। (उनमें से) कई एक तो चूर्ण हुए सिरों सहित (आपके) दाँतोंके बीचमें फँसे हुए दीख रहे हैं।

विवेचन- इस श्लोक में काव्य के रस और विश्वरूप की भयावहता का एकरूप देखने को मिलता है।

साहित्य और काव्य में नवरसों की प्रधानता मानी गई है जिनसे अत्यन्त सुन्दर अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के इस अध्याय में हम एक नवीन और अद्भुत भयावह रस का साक्षात्कार करते हैं।

यह श्लोक इतना प्रभावशाली है कि इसे पढ़ते हुए हृदय को स्थिर रखना कठिन हो जाता है। अर्जुन अत्यन्त विस्मय और भय के साथ श्रीभगवान् से कहते हैं, "हे भगवन्, यह मैं क्या देख रहा हूँ?"

'अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।'

अर्जुन देख रहे हैं कि धृतराष्ट्र के सभी सौ पुत्र **"अवनिपालसङ्घ"** के साथ श्रीभगवान् के मुखों में समा रहे हैं।

यहाँ **"अवनि"** का अर्थ पृथ्वी है और **"अवनिपाल"** का अर्थ पृथ्वी का पालन करने वाला अर्थात् 'राजा' है। अतः **"अवनिपालसङ्घ"** उन राजे-महाराजों के समूह को सूचित करता है जो इस युद्ध में सम्मिलित हुए हैं।

यहाँ भयावह दर्शन और मानवीय संवेदना के साथ ही महायुद्ध का स्वरूप और वैश्विक परिप्रेक्ष्य दिखाया गया है।

कुरुक्षेत्र का यह सङ्ग्राम केवल दो पक्षों का सङ्घर्ष नहीं अपितु एक 'महायुद्ध' था। महायुद्ध की परिभाषा ही यही है कि जब अनेक राष्ट्र और शक्तियाँ एक साथ सम्मिलित हो जाएँ तो वह विकराल रूप ले लेता है।

वर्तमान वैश्विक स्थिति का दृष्टान्त देते हुए इसे समझा जा सकता है। जिस प्रकार वर्तमान सङ्घर्षों में **"अमेरिका"**, **"इज़राइल"**, **"ईरान"** और **"इराक"** जैसे अनेक देश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से **"इन्वॉल्व"** (सम्मिलित) होते जा रहे हैं वैसे ही महाभारत के समय आर्यावृत के समस्त प्रदेशों के राजा इस युद्ध में सहभागी हुए थे। अर्जुन श्रीभगवान् के विराट् स्वरूप में उन समस्त **"अवनिपालसङ्घों"** अर्थात् राजाओं के समूहों को काल के मुख में जाते हुए देख रहे हैं।

कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में उपस्थित महान् योद्धाओं का उल्लेख करते हुए अर्जुन श्रीभगवान् के विश्वरूप में उनका भविष्य देख रहे हैं। वे कहते हैं-

'भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥'

अर्जुन योद्धाओं का परिचय देते हुए प्रमुख योद्धाओं का वर्णन करते हैं और कर्ण को 'सूतपुत्र' कह कर सम्बोधित करते हैं।

अर्जुन विशेष रूप से तीन महारथियों का नाम लेते हैं— **'भीष्म'** अर्थात् हमारे परम आदरणीय पितामह भीष्म, **'द्रोणः'** अर्थात् शस्त्रास्त्र विद्या के ज्ञाता आचार्य द्रोण और **'सूतपुत्रस्तथासौ'** अर्थात् कर्ण। यहाँ **"तथा असौ"** का अर्थ है— "वह भी" या "यह भी"। अर्जुन देख रहे हैं कि ये सभी अपराजेय योद्धा काल के मुख की ओर अग्रसर हैं।

'सूतपुत्र' शब्द का सन्दर्भ

अर्जुन द्वारा कर्ण के लिए प्रयुक्त **'सूतपुत्र'** शब्द के प्रयोग पर विचार करते हुए यह स्पष्ट होता है कि यह सम्बोधन किसी हीन भावना के स्थान पर एक सामान्य परिचय के रूप में है। जिस प्रकार आधुनिक समाज में हम अनौपचारिक रूप से किसी को उसके पिता के व्यवसाय से सम्बोधित कर देते हैं, जैसे— **"डॉक्टर"** का पुत्र, वकील का पुत्र अथवा **"कारपेन्टर"** का पुत्र; ठीक उसी प्रकार कर्ण का पालन-पोषण जिस सूत (अधिरथ) ने किया उसी के आधार पर उसे 'सूतपुत्र' कहा गया। अर्जुन ने इसी लोक-प्रचलित नाम का उल्लेख करते हुए **'सूतपुत्रस्तथासौ'** कहा है।

अर्जुन केवल प्रतिपक्ष के ही नहीं अपितु **'सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः'** अर्थात् अपने पक्ष के भी **"योधमुख्य"** (प्रमुख योद्धाओं) को उसी स्थिति में देख रहे हैं। यहाँ **"अस्मदीयैः"** का अर्थ है 'हमारे'।

अर्जुन को यह बोध हो रहा है कि मृत्यु के उस विकराल चक्र में पक्ष और विपक्ष का कोई भेद नहीं रह गया है; दोनों ही ओर के श्रेष्ठ और मुख्य योद्धा समान रूप से परमात्मा के उस महाविनाशकारी रूप में विलीन होते जा रहे हैं।

अर्जुन ने धृतराष्ट्र के शत पुत्रों, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कर्ण और अपने पक्ष के प्रमुख योद्धाओं का नामोल्लेख करते हुए उनके भयावह भविष्य का वर्णन किया है। वे कहते हैं:

'वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।'

यहाँ **"ते वक्त्राणि"** का तात्पर्य श्रीभगवान् के उन प्रज्वलित मुखों से है जिनमें ये समस्त योद्धा **"त्वरमाणा विशन्ति"** अर्थात् अत्यन्त तीव्रता से प्रवेश कर रहे हैं।

जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि में जो भी वस्तु गिरती है वह भस्मसात् हो जाती है वैसे ही अर्जुन को ये महारथी परमात्मा के मुखरूपी अग्नि में विलीन होकर समाप्त होते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

दंष्ट्राकराल और विकराल संहार

श्रीभगवान् के मुख केवल प्रज्वलित ही नहीं अपितु **'दंष्ट्राकरालानि भयानकानि'** हैं। वे विकराल दाँतों (दाढ़ों) के कारण अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहे हैं। अर्जुन को यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि पक्ष-विपक्ष का भेद मिटाकर ये सभी योद्धा उन प्रलयङ्कारी मुखों के गर्त में समाते जा रहे हैं।

इसके आगे का वर्णन और भी अधिक हृदयविदारक एवं भयङ्कर है। अर्जुन कहते हैं-

'केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥'

- **"दशनान्तरः"- दन्त-पङ्क्तियों के मध्य फँसे योद्धा**

जिस प्रकार भोजन करते समय दाँतों के मध्य स्थित **"गैप"** (रिक्त स्थान) में अन्न के कण फँस जाते हैं ठीक उसी प्रकार अर्जुन को कुछ योद्धा **'दशनान्तरेषु'** अर्थात् श्रीभगवान् की विकराल दन्त-पङ्क्तियों के बीच **"विलग्न"** (फँसे हुए अथवा चिपके हुए) दिखाई दे रहे हैं। अर्जुन देख रहे हैं कि श्रीभगवान् काल रूप में सबको चबा-चबाकर भक्षण कर रहे हैं। इस दृश्य की विभीषिका इतनी तीव्र है कि योद्धाओं के मस्तक चूर्ण होकर श्रीभगवान् के दाँतों के बीच अटके हुए सप्रमाण **"सन्दृश्यन्ते"** भली-भाँति दिखाई दे रहे हैं। यह दृश्य इस सत्य को उद्घाटित करता है कि परमात्मा का काल रूप किसी को भी शेष नहीं छोड़ता और अन्ततः सब उसी में विलीन हो जाते हैं।

"उत्तमाङ्गः"- शरीर का प्रधान अवयव

मानव शरीर में शिर (सिर) को **"उत्तमाङ्ग"** कहा जाता है। इसे 'उत्तम' की सञ्ज्ञा इसलिये दी गई है क्योंकि शरीर की अधिकांश महत्त्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ—यथा चक्षु (आँखें), कर्ण (कान), नासिका (नाक), जिह्वा और मुख्य रूप से मस्तिष्क इसी भाग में स्थित हैं। यह समस्त चेतना का केन्द्र है।

"चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः"- महाविनाश का दृश्य

अर्जुन श्रीभगवान् के विश्वरूप में अत्यन्त भयावह दृश्य देख रहे हैं। वे कहते हैं— काल रूपी श्रीभगवान् ने अपने विकराल दाँतों के मध्य दबाकर योद्धाओं के इन उत्तम अङ्गों अर्थात् मस्तक को चूर्ण कर दिया है। अर्जुन को उन महारथियों के सिर फूटे हुए और विनष्ट होते हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

इस दृश्य की तुलना आधुनिक युद्धों की विभीषिका से की जा सकती है। युद्ध में जब मिसाइलों का प्रहार होता है तब प्रज्वलित अग्नि में मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। बहुमञ्जिला भवनों (बिल्डिंग्स) के धराशायी होने पर उनके नीचे दबे शरीरों और मस्तकों का जो चूर्ण हो जाता है अर्जुन उसी प्रलयङ्कारी दृश्य को साक्षात् **"श्रीभगवान्"** के मुख में घटित होते देख रहे हैं।

भयावह दर्शन और मानवीय संवेदना

साधारण जीवन में यदि हम कोई लघु मार्ग-दुर्घटना (एक्सीडेंट) भी देख लें जहाँ कोई व्यक्ति किसी **"ट्रक"** जैसे भारी वाहन के नीचे आ गया हो तो वह दृश्य भी हमारे लिए असहनीय हो जाता है। यहाँ तो अर्जुन **"असङ्ख्य"** योद्धाओं की एक साथ ऐसी कारुणिक और भयावह अवस्था देख रहे हैं। यह दर्शन न केवल विस्मयकारी है अपितु आत्मा को झकझोर देने वाला एक अत्यन्त **"भयावह"** साक्षात्कार है।

11.28

यथा नदीनां(म्) बहवोऽम्बुवेगाः(स्),
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा,
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥11.28॥

जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह (स्वाभाविक) ही समुद्रके सम्मुख दौड़ते हैं, ऐसे ही वे संसारके महान् शूरवीर आपके सब तरफ से देदीप्यमान मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं।

विवेचन- अर्जुन हज़ारों-लाखों वीरों को श्रीभगवान् के प्रज्वलित मुखों में विलीन होते हुए देख रहे हैं।

इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए वे एक अत्यन्त सटीक उपमा देते हैं कि जिस प्रकार नदियों का बहुत सारा जल (**"अम्बु"**) अत्यन्त तीव्र वेग के साथ समुद्र की ओर दौड़ता है और अन्ततः उसी में समाहित होकर अपना अस्तित्व खो देता है, ठीक उसी प्रकार ये समस्त **"नरलोकवीर"** श्रीभगवान् के देदीप्यमान मुखों में प्रविष्ट हो रहे हैं। यहाँ समुद्र की जठराग्नि और श्रीभगवान् के प्रज्वलित मुखों के मध्य साम्य दर्शाया गया है। जिस प्रकार समुद्र में मिलने के पश्चात् नदी पृथक् नहीं रहती उसी प्रकार ये योद्धा परमात्मा के साथ एकरूप होकर भस्मसात् हो रहे हैं।

संस्कृत अन्योक्ति- समुद्र का स्वभाव
इसी सन्दर्भ में समुद्र के व्यवहार पर एक कवि की अन्योक्ति स्मरणीय है-

'आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः किं तावदर्जितमनेन दुरर्णवेन।'
'क्षारीकृतञ्च वडवाहनौ हुतञ्च पातालकुक्षिकोहरे विनिवेशितञ्च॥'

अर्थात् समुद्र ने समस्त सरिताओं का मधुर जल लेकर क्या प्राप्त किया? उसने उस जल को खारा कर दिया, उसे अपनी **"वडवाग्नि"** (समुद्र की अग्नि) में स्वाहा कर दिया और पाताल के गहन गर्त में डाल दिया।

अर्जुन को भी यही अनुभव हो रहा है कि ये श्रेष्ठ योद्धा श्रीभगवान् के मुखरूपी अग्नि में केवल नष्ट होने के लिए ही प्रविष्ट हो रहे हैं।

11.29

यथा प्रदीप्तं(ञ्) ज्वलनं(म्) पतङ्गा,
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका:(स्),
तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥11.29॥

जैसे पतंगे (मोहवश) (अपना) नाश करनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ते हुए प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट होते हैं, ऐसे ही ये सब लोग भी (मोहवश) (अपना) नाश करनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ते हुए आपके मुखोंमें प्रविष्ट हो रहे हैं।

विवेचन- विनाश की इस गति को और अधिक स्पष्ट करने के लिए अर्जुन एक अन्य दृष्टान्त देते हैं कि जैसे वर्षा ऋतु के पश्चात् उत्पन्न होने वाले **"पतङ्गः"** (कीड़े) दीपक की लौ या प्रज्वलित अग्नि के प्रकाश से आकर्षित होकर अत्यन्त तीव्र वेग (**"समृद्धवेगाः"**) से उसमें कूद पड़ते हैं ठीक वैसे ही ये वीर अपने स्वयं के विनाश के लिए श्रीभगवान् के मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

जिस प्रकार पतङ्ग अनजाने में अपनी मृत्यु की ओर दौड़ता है वैसे ही ये योद्धा भी काल के गाल में समाने के लिए विवश हैं।

अर्जुन के लिए यह साक्षात्कार अत्यन्त मर्मभेदी है। वे देख रहे हैं कि ये वीर अपनी वीरता के गर्व के साथ जिस वेग से आगे बढ़ रहे हैं वह वेग उन्हें केवल उनके निश्चित अन्त की ओर ही ले जा रहा है।

11.30

लेलिह्यसे ग्रसमानः(स्) समन्ताल्,
लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं(म्),
भासस्तवोग्राः(फ्) प्रतपन्ति विष्णो॥11.30॥

(आप अपने) प्रज्वलित मुखोंद्वारा सम्पूर्ण लोकोंका ग्रसन करते हुए (उन्हें) सब ओरसे बार-बार चाट रहे हैं (और) हे विष्णो!

आपका उग्र प्रकाश अपने तेजसे सम्पूर्ण जगतको परिपूर्ण करके (सबको) तपा रहा है।

विवेचन- अर्जुन श्रीभगवान् के क्रियाकलापों को देखकर स्तब्ध हैं। वे कहते हैं-

'लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।'

यहाँ **"लेलिह्यसे"** शब्द अत्यन्त मार्मिक है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने प्रिय व्यञ्जन का रसास्वादन करते समय चारों ओर से जिह्वा फिराकर उसे चाटता है ठीक वैसे ही श्रीभगवान् अपने प्रज्वलित मुखों (**"ज्वलद्भिः वदनैः"**) से समस्त लोकों को **"समन्तात्"** (सभी ओर से) चाट रहे हैं।

वे केवल योद्धाओं को स्वीकार नहीं कर रहे अपितु उन्हें **"ग्रसमानः"** अर्थात् ग्रास बनाकर निगल रहे हैं। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और धृतराष्ट्र के पुत्र सभी उस कालाग्नि में विलीन हो रहे हैं।

श्रीभगवान् का यह स्वरूप उस सौम्य छवि से सर्वथा भिन्न है जिसकी कल्पना भक्त सामान्यतः करते हैं- जैसे मन्द मुस्कान के साथ मुरलीधर कृष्ण या विट्ठल की शान्त मूर्ति।

अर्जुन कहते हैं-

'तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥'

हे **"विष्णो"**! आपके **"उग्राः भासाः"** भयानक तेज और किरणें सम्पूर्ण जगत् को अपने ताप से भर रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक आप चराचर जगत् को पूर्णतः निगल नहीं लेंगे, आपकी यह क्षुधा शान्त नहीं होगी। यह उग्र प्रकाश समस्त संसार को सन्तप्त कर रहा है।

श्रीभगवान् के प्रलयङ्कारी रूप को देखकर अर्जुन किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उनके मन में विस्मयपूर्ण जिज्ञासा है और उनके मन में अनेक प्रश्न उमड़ रहे हैं, "आप कौन हैं? आप यह क्या कर रहे हैं और आपने यह विनाश की कैसी लीला आरम्भ की है?"

अर्जुन स्वीकार करते हैं कि उन्हें लगा था कि उन्होंने जिस **"विश्वरूप"** के दर्शन की अभिलाषा की थी, वह सौन्दर्य और ऐश्वर्य से पूर्ण होगा किन्तु यहाँ तो विनाश का ताण्डव दिख रहा है।

वे विचलित होकर श्रीभगवान् से पूछते हैं कि भक्ति और जिज्ञासा के उत्तर में उन्हें यह संहार का दृश्य क्यों दिखाया जा रहा है।

11.31

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो,
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं(न्),
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥11.31॥

मुझे यह बताइये कि उग्र रूपवाले आप कौन हैं? हे देवताओंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। (आप) प्रसन्न होइये। आदिरूप आपको (मैं) तत्त्व से जानना चाहता हूँ; क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्तिको भलीभांति नहीं जानता।

विवेचन- इस अतिशय भयावह दृश्य को देखकर श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन भी भयभीत हो उठते हैं। वे अपने सखा और गुरु श्रीकृष्ण के इस अपरिचित रूप को पहचान नहीं पा रहे हैं।

वे प्रार्थना करते हुए पूछते हैं— "हे भगवन्, कृपा करके मुझे बताइए कि यह उग्र रूप धारण करने वाले आप कौन हैं? मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ। हे **"देववर"**, मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपके इस **"आद्यम्"** (आदि रूप) को तत्त्व से जानना चाहता हूँ क्योंकि मैं आपकी इस संहारकारी **"प्रवृत्तिम्"** (चेष्टा) को समझ पाने में असमर्थ हूँ।"

प्रपत्ति और प्रार्थना

अपनी व्याकुलता को शान्त करने के लिए अर्जुन श्रीभगवान् की शरण में जाते हैं और प्रार्थना करते हैं-

'प्रसीद देवेश जगन्निवास'
'हे देववर प्रसीद'

यहाँ **"प्रसीद"** शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है— "प्रसन्न हो जाइए"।

व्याकरण की दृष्टि से यह आज्ञार्थक (लोट् लकार) शब्द है जिसे भक्त श्रीभगवान् से कृपा की याचना करने अथवा विनम्र विनती करने के लिए प्रयुक्त करता है।

अर्जुन श्रीभगवान् को **"देवेश"** (देवों के ईश्वर), **"जगन्निवास"** (जगत के आधार) और **"देववर"** (श्रेष्ठ देव) कहकर सम्बोधित कर रहे हैं। वे श्रीभगवान् से आग्रह कर रहे हैं कि वे अपने इस विकराल रूप को शान्त करें और उन पर अपनी कृपा का प्रसाद (अनुग्रह) बरसाएँ।

अर्जुन श्रीभगवान् के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहते हैं-

'विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥'

यहाँ **"भवन्तम् आद्यम्"** का अर्थ है— "आप जो इस विश्व के आदि पुरुष हैं"।

अर्जुन संशय में हैं कि क्या यह विकराल रूप धारण करने वाले वही आदि पुरुष हैं जिनकी महिमा वेदों में गाई गई है। वे विनम्रतापूर्वक कहते हैं, "मैं आपको तत्त्व से, पूर्ण रूप से जानना चाहता हूँ। (**"विज्ञातुम् इच्छामि"**) आपका यह वर्तमान स्वरूप मेरी बुद्धि की सीमा से परे है।"

प्रवृत्ति और कार्य-कारण का प्रश्न

अर्जुन के विचलित होने का मुख्य कारण श्रीभगवान् की **"प्रवृत्ति"** (चेष्टा) है। वे कहते हैं, "आप किस उद्देश्य से इस संहारकारी कार्य में प्रवृत्त हुए हैं? आपकी इस गतिविधि का लक्ष्य क्या है? यह सब मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

अर्जुन यहाँ उस कार्य-कारण सम्बन्ध को ढूँढ रहे हैं जिसके वशीभूत होकर प्रेममय श्रीकृष्ण आज साक्षात् काल के रूप में खड़े हैं। वे श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें इस दुविधा से मुक्त करें और अपनी योजना का स्पष्ट सङ्केत दें।

11.32

श्रीभगवानुवाच
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो,
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां(न्) न भविष्यन्ति सर्वे,
येऽवस्थिताः(फ्) प्रत्यनीकेषु योधाः॥11.32॥

श्रीभगवान् बोले - (मैं) सम्पूर्ण लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ काल हूँ (और) इस समय (मैं) (इन सब) लोगोंका संहार करनेके लिये (यहाँ) आया हूँ। (तुम्हारे) प्रतिपक्षमें जो योद्धालोग खड़े हैं, (वे) सब तुम्हारे (युद्ध किये) बिना भी नहीं रहेंगे।

विवेचन- अर्जुन की व्याकुलता और प्रार्थना का उत्तर देते हुए श्रीभगवान् अपना वास्तविक और सर्वशक्तिमान् स्वरूप प्रकट करते हैं। वे किसी साधारण योद्धा या मित्र की भाँति नहीं अपितु ब्रह्माण्ड की सर्वोच्च नियति के रूप में उत्तर देते हैं-

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।'

श्रीभगवान् उद्घोष करते हैं— **"कालोऽस्मि"** अर्थात् "मैं काल हूँ"। यहाँ **"काल"** शब्द के दो गहरे अर्थ निहित हैं- प्रथम 'समय' की अविरल धारा और द्वितीय 'मृत्यु' जो सबको निगल लेती है।

लोकप्रिय संस्कृति में जैसे प्रसिद्ध **"महाभारत"** धारावाहिक के प्रारम्भिक सङ्गीत और स्वर में 'मैं काल हूँ' का प्रयोग किया गया है वह इसी मूल मन्त्र से प्रेरित है।

लोकक्षय और प्रवृद्ध रूप

श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं कि वे **"लोकक्षयकृत्"** हैं—अर्थात् लोकों का क्षय (विनाश) करने वाले।

यहाँ प्रयुक्त **"प्रवृद्धः"** शब्द का अर्थ है— 'अत्यन्त बढ़ा हुआ'।

श्रीभगवान् ने अपने इस विराट् और विकराल रूप का विस्तार केवल एक ही उद्देश्य के लिए किया है— **'लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः'**। वे संसार के अधर्मी तत्त्वों का संहार करने और सृष्टि का सन्तुलन पुनः स्थापित करने के कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। जो कुछ भी अर्जुन को श्रीभगवान् के मुख में प्रविष्ट होते हुए दिख रहा है वह वास्तव में काल की वह अमोघ शक्ति है जो नियत समय पर प्रत्येक वस्तु को समाप्त कर देती है।

'ऋतेऽपि त्वाम्' — निमित्त मात्र का बोध

अर्जुन के मन में यह सूक्ष्म अहङ्कार था कि "मैं युद्ध करूँगा तो ये योद्धा मरेंगे" या "यदि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो ये बच जाएँगे"। श्रीभगवान् इस भ्रान्ति का निवारण करते हुए कहते हैं-

'ऋतेऽपि त्वाम्' — अर्थात् तुम्हारे बिना भी।

श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं कि तुम युद्ध करो या न करो, ये जो प्रतिपक्ष की सेनाओं में खड़े योद्धा (**'येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः'**) दिखाई दे रहे हैं, वे भविष्य में शेष नहीं रहेंगे (**'न भविष्यन्ति सर्वे'**)। काल का निर्णय हो चुका है और मृत्यु की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है।

अर्जुन को यह बोध कराया जा रहा है कि वे केवल एक निमित्त हैं; मारने वाला साक्षात् काल है, अर्जुन नहीं।

यहाँ त्रिकालदर्शी परमात्मा और समय की अवधारणा को समझाया गया है।

श्रीभगवान् के लिए भूत, वर्तमान और भविष्य का कोई भेद नहीं है। अर्जुन जिसे भविष्य काल मान रहे हैं, वह काल-स्वरूप परमात्मा के लिए घटित हो चुका (भूतकाल) है। जो हमारे लिए "होने वाला है", वह ईश्वर की दृष्टि में "हो चुका है"। श्रीभगवान् ने उन समस्त आततायियों को पहले ही समाप्त कर दिया है, अर्जुन तो केवल उन शरीरों को गिरते हुए देखेंगे जो सूक्ष्म रूप से काल द्वारा पहले ही ग्रसे जा चुके हैं।

निष्कर्ष-अहङ्कार का त्याग और शरणागति

इस उद्घोष के माध्यम से श्रीभगवान् अर्जुन के "कर्तृत्व-अभिमान" (मैं करने वाला हूँ) को जड़ से समाप्त कर देते हैं। वे सन्देश देते हैं कि "तुम नहीं मारोगे तो भी ये मरेंगे क्योंकि इनका काल आ गया है"।

श्रीभगवान् कहते हैं, उचित यही है कि अर्जुन अपने धर्म का पालन करें और काल की इस महान योजना में एक सहयोगी मात्र बनें।

श्रीभगवान का अन्तिम निर्देश यही है— "जो मैं बता रहा हूँ, वही करो क्योंकि काल के विधान को बदला नहीं जा सकता।"

11.33

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व,
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं(म्) समृद्धम्।
मयैवैते निहताः(फ्) पूर्वमेव,
निमित्तमात्रं(म्) भव सव्यसाचिन्॥11.33॥

इसलिये तुम (युद्धके लिये) खड़े हो जाओऔर यशको प्राप्त करो (तथा) शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोगो। ये सभी मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन्! अर्थात् दोनों हाथों से बाण चलानेवाले अर्जुन! (तुम इनको मारनेमें) निमित्तमात्र बन जाओ।

विवेचन- भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए अत्यन्त ओजस्वी निर्देश देते हैं-

'तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।'

यहाँ **"तस्मात्"** शब्द एक निष्कर्ष की भाँति प्रयुक्त हुआ है। श्रीभगवान् कहते हैं— "चूँकि मैं बढ़ा हुआ काल हूँ और संहार की प्रक्रिया निश्चित हो चुकी है इसलिए हे अर्जुन! तुम उठकर खड़े हो जाओ (**'त्वमुत्तिष्ठ'**)।"

यह केवल शारीरिक रूप से उठने का सङ्केत नहीं है अपितु विषाद को त्याग कर अपने क्षत्रिय धर्म के प्रति सचेत होने का आह्वान है।

यश और समृद्धि का वरदान

श्रीभगवान् अर्जुन को आश्वस्त करते हैं कि तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। वे कहते हैं, "युद्ध के लिए तत्पर होकर तुम **'यशो लभस्व'** अर्थात् यश प्राप्त करो।" अर्जुन को शत्रुओं को परास्त कर एक **"समृद्धम् राज्यम्"** (ऐश्वर्यशाली राज्य) का उपभोग करने का निर्देश दिया गया है।

निमित्त भाव और कर्म की पूर्णता

जब मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठाकर "ईश्वर के लिए" करना आरम्भ करता है तो उसके भीतर एक आध्यात्मिक परिवर्तन घटित होता है। एक-एक कार्य को पूर्ण कर उसे परमात्मा को अर्पित (**"ईश्वरार्पण"**) करते जाने से उसे साक्षात श्रीभगवान् के उस महावाक्य की अनुभूति होने लगती है— **'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'**।

यहाँ 'निमित्त' बनने का अर्थ निष्क्रिय होना नहीं बल्कि यह समझना है कि मूल कर्ता परमात्मा हैं और हम उनके हाथों के यन्त्र मात्र हैं।

जिस प्रकार गोवर्धन पर्वत को श्रीभगवान् ने अपनी कनिष्ठा अँगुली (**"कराङ्गुली"**) पर धारण कर लिया था किन्तु ग्वाल-बालों ने अपनी-अपनी लाठियाँ (लकड़ी) लगाकर यह सन्तोष प्राप्त किया कि वे भी इस महान कार्य में सहभागी हैं; ठीक वैसे ही भगवत्-कार्य में हमारा लघु योगदान भी हमें ईश्वर के सान्निध्य का परम सुख प्रदान करता है।

कर्म के माध्यम से समाधि की अवस्था

अध्यात्म शास्त्र में वर्णित समाधि की विभिन्न अवस्थाओं (जैसे सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) के सन्दर्भ में- भगवत्-कार्य में संलग्न होना भी एक प्रकार की **"समाधि अवस्था"** ही है।

जब हम अपने समस्त कार्यों को भगवत्-भाव से करने लगते हैं तो प्रत्येक कार्य की सफलता हमें यह प्रत्यक्ष अनुभव कराती है कि "श्रीभगवान् हमारे साथ हैं"।

यह सान्निध्य की अनुभूति ही साधक को मानसिक द्वन्द्वों से मुक्त कर स्थिरप्रज्ञ बनाती है। जहाँ ईश्वर का सङ्कल्प और मनुष्य का पुरुषार्थ एक साथ मिलते हैं वहाँ विजय सुनिश्चित हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तिम श्लोक का यही सार है-

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।'
'तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥'

अर्थात् जहाँ **"योगेश्वर कृष्ण"** (दिव्य शक्ति/मार्गदर्शन) हैं और जहाँ **"धनुर्धर पार्थ"** (सङ्कल्पित कर्मयोगी) हैं वहीं श्री (ऐश्वर्य), विजय, विभूति और अचल नीति वास करती है।

यह श्लोक आश्वस्त करता है कि यदि हमारा कार्य 'भगवत्-कार्य' की श्रेणी में आता है तो उसकी सफलता असन्दिग्ध है। इस भाव के साथ कर्म करने वाला व्यक्ति कभी हताश नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि वह उस अनन्त सत्ता के संरक्षण में कार्य कर रहा है।

जब काल स्वयं साथ हो तो पराजय की कोई सम्भावना शेष नहीं रहती। श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को यह स्पष्ट कर रहे हैं कि उनकी सफलता का मार्ग प्रशस्त हो चुका है, बस उन्हें कर्म में प्रवृत्त होना है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म के मर्म को समझाते हुए कहते हैं कि काल का पूर्व-निश्चय हो गया है।

- **'मयैवैते निहताः पूर्वमेव'**

यहाँ **"मया एव"** का अर्थ है— "मेरे ही द्वारा"। श्रुभगवान् स्पष्ट करते हैं कि ये समस्त योद्धा मेरे द्वारा पहले ही (**"पूर्वम् एव"**) मारे जा चुके हैं। अर्जुन जिसे भविष्य की घटना मान रहे हैं, वह काल के विधान में पहले ही घटित हो चुकी है। यह श्लोक काल की उस शक्ति को दर्शाता है जहाँ समय की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं और परमात्मा की दृष्टि में सब कुछ वर्तमानवत् होता है। जब सब कुछ पहले से ही नियत है तो अर्जुन का क्या कर्त्तव्य है?

श्रीभगवान् कहते हैं—

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'।

"हे सव्यसाचिन् (दोनों हाथों से बाण चलाने में कुशल अर्जुन)! तुम केवल एक निमित्त बन जाओ।"

अक्सर यह प्रश्न उठता है कि "यदि सब कुछ ईश्वर ही कर रहे हैं तो हम क्यों करें?" इसका उत्तर यहाँ मिलता है। ईश्वर के कार्य में **"निमित्त"** बनना एक परम सौभाग्य है।

श्रीभगवान् अर्जुन से कह रहे हैं कि "युद्ध तो मैं जीत चुका हूँ तुम बस अपना गाण्डीव उठाकर बाण चलाने का औपचारिक कर्म करो ताकि विजय का श्रेय तुम्हें प्राप्त हो सके।" यह भाव मनुष्य को अहङ्कार से मुक्त कर ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने की प्रेरणा देता है।

काल, विज्ञान और आइंस्टीन का सापेक्षता सिद्धान्त

अक्सर विज्ञान के विद्यार्थियों के मन में यह प्रश्न उठता है कि "जो भविष्य में होने वाला है, उसे कोई पहले कैसे देख सकता है?"

क्या श्रीभगवान् का यह कथन कि "ये पहले ही मारे जा चुके हैं," केवल एक रूपक है या इसके पीछे कोई वैज्ञानिक तर्क भी है?

आधुनिक भौतिकी के महान् वैज्ञानिक **"अल्बर्ट आइंस्टीन"** के समय और स्थान (**Time and Space**) के सिद्धान्तों से इस गुत्थी को सुलझाया जा सकता है।

आइंस्टीन का उदाहरण: 'प्रकाश-वर्ष' और समय का अन्तराल

आइंस्टीन ने समय को समझने के लिए एक अत्यन्त लम्बी रेलगाड़ी (**"ट्रेन"**) की कल्पना करने को कहा। मान लीजिए यह ट्रेन इतनी विशाल है कि इसके अन्तिम डिब्बे (गार्ड) से यदि कोई हरा प्रकाश (सिग्नल) दिखाया जाए तो उस प्रकाश को इञ्जन तक पहुँचने में दो महीने का समय लगे।

अब यदि कोई प्रेक्षक (जैसे परमात्मा) उस ट्रेन को दूर से देख रहा है और वह सर्वत्र उपस्थित है तो वह गार्ड द्वारा दिखाए गए हरे सिग्नल को उसी क्षण देख लेगा। इञ्जन के ड्राइवर के लिए वह घटना अभी भविष्य है क्योंकि उसे वह प्रकाश दो महीने बाद दिखाई देगा। ऐसी स्थिति में वह प्रेक्षक ड्राइवर को पहले ही बता सकता है कि "तुम्हारे लिए दो महीने बाद जो होने वाला है वह मेरे लिए अभी

(वर्तमान में) घटित हो चुका है।"

खगोल विज्ञान और भूतकाल का दर्शन

यही स्थिति ब्रह्माण्ड में स्थित तारों की है। हम आकाश में जो तारे देखते हैं, वे हमसे इतने प्रकाश-वर्ष दूर हैं कि आज हमें दिखाई देने वाला उनका प्रकाश लाखों वर्ष पूर्व वहाँ से चला था। हम वास्तव में उनके **"**भूतकाल**"** को वर्तमान में देख रहे हैं। श्रीभगवान् स्वयं **"काल"** हैं और सर्वव्यापी हैं, उनके लिए समय की यह दूरी अर्थहीन है।

जो अर्जुन के लिए भविष्य की अनिश्चितता है वह त्रिकालदर्शी परमात्मा के लिए एक पूर्ण हो चुकी घटना है इसलिए वे अधिकारपूर्वक कहते हैं— **'मया एव एते निहताः पूर्वम् एव'**।

स्वधर्म का पालन और ईश्वरार्पण बुद्धि। कर्त्तव्य का ईश्वरीय निर्देश

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यह स्पष्ट कर देते हैं कि यद्यपि विनाश की प्रक्रिया काल के अधीन पूर्व-नियत है तथापि अर्जुन को अपने 'स्वधर्म' से च्युत नहीं होना चाहिए। अर्जुन एक योद्धा हैं और इस समय युद्ध करना ही उनका अनिवार्य कर्त्तव्य है।

श्रीभगवान् का सन्देश स्पष्ट है— "तुम परिणाम की चिन्ता छोड़ो और अपना कर्म करो।" यह हमारे लिए भी एक महान् जीवन-सूत्र है कि हम अपने निर्धारित कार्यों को पूरी निष्ठा से सम्पन्न करें।

"ईश्वरार्पण भाव:"- भगवत्-कार्य की अनुभूति

जब हम किसी कार्य को 'अपना' मानकर करते हैं तो उसमें कर्तापन का अहङ्कार और फल की आसक्ति जुड़ जाती है। इसके विपरीत, जब हम यह अनुभव करते हैं कि "यह कार्य श्रीभगवान् ने मुझे सौंपा है और मैं उन्हीं के लिए इसे कर रहा हूँ," तब वह कर्म 'ईश्वरार्पण' हो जाता है। अर्जुन को भी यही भाव अपनाने का निर्देश है कि वे उस युद्ध को 'भगवत्-कार्य' समझें। जब हम इस भाव से युक्त होकर एक-एक कार्य को समाप्त करते जाते हैं तब हमें साक्षात् ईश्वर की सन्निधि (निकटता) का अनुभव होता है। हमें यह बोध होने लगता है कि हम केवल एक माध्यम हैं और वास्तविक शक्ति तो परमात्मा की ही है जो हमारे भीतर से कार्य कर रही है।

निष्कर्ष- काल की गति और मानवीय भूमिका

श्रीभगवान् अर्जुन को 'निमित्त' बनने का जो आदेश देते हैं वह वास्तव में मनुष्य को इतिहास और काल की महान् योजना में उसकी भूमिका का बोध कराना है। श्रीभगवान् स्वयं काल हैं और वे सब कुछ जानते हैं इसलिये उनके वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए कर्म में प्रवृत्त होना ही श्रेष्ठता है। "जो मैं बता रहा हूँ, वही करो"- श्रीभगवान् का यह वाक्य शरणागति और अनुशासन का सर्वोच्च शिखर है।

निमित्त भाव और कर्म की पूर्णता

जब मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठाकर "ईश्वर के लिए" करना आरम्भ करता है तो उसके भीतर एक आध्यात्मिक परिवर्तन घटित होता है। एक-एक कार्य को पूर्ण कर उसे परमात्मा को अर्पित (**"ईश्वरार्पण"**) करते जाने से उसे साक्षात् श्रीभगवान् के उस महावाक्य की अनुभूति होने लगती है— **'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'**।

सामूहिक सेवा: श्रीमद्भगवद्गीता परिवार का आदर्श

भगवत्-कार्य की व्यापकता को हम **"श्रीमद्भगवद्गीता परिवार"** के वर्तमान प्रकल्पों में साक्षात् देख सकते हैं। लाखों जिज्ञासुओं का श्रीमद्भगवद्गीता से जुड़ना किसी व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु दैवीय सङ्कल्प का परिणाम है।

यहाँ प्रत्येक व्यक्ति **"निमित्त"** मात्र है। चाहे कोई प्रशिक्षक के रूप में विभिन्न स्तरों (L1, L2 आदि) पर शिक्षण दे रहा हो, कोई तकनीकी सहयोग कर रहा हो अथवा कोई 'कॉलिंग टीम' के माध्यम से सम्पर्क का सेवा-कार्य कर रहा हो- प्रत्येक सेवा समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। जब हम अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी लघु कार्य को "श्रीभगवान् का कार्य" समझकर करते हैं तब हमें उनके निरन्तर सान्निध्य का अनुभव होने लगता है।

सव्यसाची: दक्षता और समर्पण का समन्वय

श्रीभगवान् अर्जुन को **'सव्यसाचिन्'** कहकर सम्बोधित करते हैं। 'सव्यसाची' उस योद्धा को कहा जाता है जो दोनों हाथों से समान कुशलता के साथ धनुष चलाने में सक्षम हो। अर्जुन ने कठोर अभ्यास और पुरुषार्थ से यह अद्वितीय कला आत्मसात् की थी।

श्रीभगवान् यहाँ एक गूढ़ सङ्केत दे रहे हैं— "हे अर्जुन! तुमने जो यह कौशल अर्जित किया है, वह मेरे ही कार्य के लिए है। अपनी इस दक्षता का उपयोग अब तुम मेरे 'निमित्त' बनकर करो।"

यह सन्देश हमें सिखाता है कि हमारी प्रतिभा और कौशल तभी सार्थक हैं जब वे धर्म और भगवत्-सेवा में विनियोजित हों। जब हम अपने बाण (अपने कर्म) चलाते हैं तो बाह्य जगत को लगता है कि 'हम' कर रहे हैं किन्तु साधक जानता है कि सूत्रधार पीछे खड़ा है और उसने परिणाम पहले ही सुनिश्चित कर दिया है।

विजय का निश्चित बोध

जब श्रीभगवान् अर्जुन को उनकी दक्षता का स्मरण कराते हैं और स्वयं को वास्तविक कर्ता बताते हैं तो अर्जुन के मन से पराजय का भय समूल नष्ट हो जाता है।

यह बोध कि "विजय तो मेरी पहले ही हो चुकी है," साधक को निर्भय होकर कर्मक्षेत्र में उतरने की प्रेरणा देता है।

11.34

द्रोणं(ञ्) च भीष्मं(ञ्) च जयद्रथं(ञ्) च,
कर्णं(न्) तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं(ञ्) जहि मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥11.34॥

द्रोण और भीष्म तथा जयद्रथ और कर्ण तथा अन्य सभी मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीरोंको तुम मारो। तुम व्यथा मत करो (और) युद्ध करो। युद्ध में (तुम निःसन्देह) वैरियोंको जीतोगे।

विवेचन- अर्जुन के मन में यह गहरा संशय था कि धृतराष्ट्र के सामान्य पुत्रों को जीतना भले ही सम्भव हो किन्तु **भीष्म पितामह**, **आचार्य द्रोण**, **कर्ण** और **जयद्रथ** जैसे महारथियों को परास्त करना असम्भव है। भीष्म को 'इच्छा-मृत्यु' का वरदान प्राप्त था, द्रोणाचार्य अस्त्र-विद्या के साक्षात् आचार्य थे और कर्ण के पास अमोघ अस्त्र थे। मानवीय दृष्टि से ये सभी 'अपराजेय' थे।

भगवान् श्रीकृष्ण इस मानसिक बाधा को तोड़ते हुए स्पष्ट करते हैं कि ये समस्त योद्धा **"मया हतान्"** अर्थात् मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। जो काल के विधान में मृत हो चुके हैं उन्हें केवल भूमि पर गिराना ही अर्जुन का कार्य है।

'मा व्यथिष्ठा' — व्यथा और भय का निवारण

श्रीभगवान् अर्जुन को आदेश देते हैं— **"मा व्यथिष्ठा"** (व्यथित मत हो)। अर्जुन की व्यथा दोहरी थी; एक ओर अपनों को खोने का शोक और दूसरी ओर गुरुजनों पर बाण चलाने का पाप-बोध।

श्रीभगवान् बोध कराते हैं कि जिस प्रकार से जब सूत्रधार कठपुतली की रस्सियाँ काट देता है उसके बाद वह निर्जीव हो जाती हैं वैसे ही इन योद्धाओं का जीवन-सूत्र (चेतना) श्रीभगवान् पहले ही काट चुके हैं। अब ये केवल शरीर मात्र शेष हैं। शोक और भय का त्याग कर युद्ध के लिए सन्नद्ध होना ही एकमात्र मार्ग है।

विजय का ध्रुव विश्वास

श्रीभगवान् उद्घोष करते हैं— **"जेतासि रणे सपत्नान्"**। तुम निश्चित रूप से रणभूमि में अपने शत्रुओं (**"सपत्नान्"**) पर विजय प्राप्त करोगे। जब संहार का आधार स्वयं परमात्मा ने तैयार कर दिया है तो विजय के मार्ग में कोई बाधा शेष नहीं रह जाती। यह विश्वास ही कर्मयोगी को अजेय बनाता है। सफलता की निश्चितता का यह भाव मनुष्य को समर्पण और निष्ठा के साथ अपना कर्त्तव्य निभाने की

ऊर्जा प्रदान करता है।

जापान के राजा की कहानी

जापान में एक राजा था, उसके राज्य पर अचानक आक्रमण हो गया। बहुत बड़ा आक्रमण हो गया और आक्रमण करने वाला भी इतना प्रखर बलवान राजा था कि इसको अब लगने लगा कि कैसे होगा?

उसका जो मुख्य सेनापति था वह भी मारा गया। अब उसको पता चल गया कि अब तो मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ। मेरा सेनापति भी नहीं है। सारी सेना हताश हो गई। वह सोचने लगा कि अब कुछ नहीं हो सकता है। हमारा सेनापति ही चला गया है तो हम कैसे युद्ध करेंगे?

संन्यासी का आगमन और तेजस्वी नेतृत्व

जब राजा ने अपने सेनापति को खो दिया और शत्रु के प्रखर बल के सामने स्वयं को असहाय पाया तब एक तेजस्वी संन्यासी का आगमन हुआ। राजा की व्यथा सुनकर संन्यासी ने शान्त भाव से कहा, "राजन्, आप चिन्ता न करें। यदि आप अनुमति दें तो इस सेना का नेतृत्व मैं करूँगा और विजय हमारी ही होगी।"

राजा पहले तो अचम्भित हुआ कि एक संन्यासी युद्ध कैसे लड़ेगा पर उसके पास कोई दूसरा विकल्प भी नहीं था। राजा की सहमति मिलते ही उस तेजस्वी संन्यासी ने योद्धा का वेश धारण कर लिया। संन्यासी का वह ओजस्वी और तेजस्वी रूप देखकर पूरी सेना के सामने राज ने उद्घोष किया— "सैनिकों, हमें यह युद्ध जीतने के लिए लड़ना है और हमारी जीत निश्चित है!"
हताश सैनिकों के मन में शङ्का हुई, "हमारा सेनापति तो मारा गया, फिर हमारी जीत कैसे सम्भव है?"

संन्यासी ने उनकी दुविधा को भांप लिया और कहा, "यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं तो चलिये उस विशाल मन्दिर में चलते हैं और साक्षात् श्रीभगवान् से ही पूछते हैं कि विजय किसकी होगी।"

मन्दिर पहुँचकर संन्यासी ने प्रार्थना की और एक सिक्का निकालकर सैनिकों से कहा, "मैं इस सिक्के को उछालता हूँ। यदि इसमें 'पट' (Tails) आया तो समझ लेना कि श्रीभगवान् हमारे साथ हैं और विजय हमारी ही होगी।"

संन्यासी ने सिक्का उछाला और 'पट' आया। सैनिकों के चेहरे खिल उठे पर किसी ने शङ्का की— "महाराज, एक बार में कैसे मान लें? क्या आप इसे दो बार और करके दिखाएङ्गे?"

संन्यासी ने पुनः सिक्का उछाला, दूसरी बार भी 'पट' आया। सेना का उत्साह बढ़ने लगा। जब तीसरी बार सिक्का उछाला गया और फिर से 'पट' ही आया तब सेना का यह विश्वास पत्थर की लकीर बन गया कि अब तो साक्षात् ईश्वर हमारे साथ हैं।

इसी प्रबल **विजिगीषु वृत्ति** (विजय की अदम्य इच्छा) के साथ सेना शत्रु पर टूट पड़ी और उन्हें पूरी तरह परास्त कर दिया।

विश्वास की खोज और मन्दिर का सङ्केत

सैनिकों के मन में उठने वाला यह संशय—"हमारी जीत कैसे हो सकती है?", एक स्वाभाविक मानवीय दुर्बलता है। संन्यासी ने इस संशय को तर्कों से नहीं बल्कि 'श्रद्धा' से सुलझाने का निश्चय किया। मन्दिर जाना और श्रीभगवान् से सङ्केत माँगना, सामूहिक चेतना को एक उच्च सत्ता से जोड़ने का प्रयास था। यह इस बात का प्रतीक है कि जब मनुष्य का स्वयं पर से विश्वास डगमगाता है तो उसे एक 'दैवीय आधार' की आवश्यकता होती है।

सिक्के को एक बार नहीं अपितु तीन बार उछालना और तीनों बार 'सकारात्मक परिणाम' (पट) प्राप्त होना, अनिश्चितता को 'ध्रुव विश्वास' में बदलने की प्रक्रिया थी।

साङ्ख्यिकीय दृष्टि से यह असम्भव लग सकता था किन्तु सैनिकों के लिए यह "ईश्वर का प्रत्यक्ष आशीर्वाद" बन गया। इसी अटल विश्वास से उपजी **"विजिगीषु वृत्ति"** (विजय की अदम्य इच्छा) ने सेना के भीतर उस शौर्य को जागृत किया, जिसने अन्ततः अजेय शत्रु को परास्त कर दिया।

आत्मविश्वास का आधार: ईश्वरीय साथ

मनुष्य के जीवन में सफलता के लिए एक महान विश्वास की आवश्यकता होती है— "मैं जो कार्य कर रहा हूँ उसमें श्रीभगवान् मेरे साथ हैं।" जब यह बोध हमारे भीतर गहरा और दृढ़ हो जाता है तब कार्य की सिद्धि निश्चित हो जाती है। हमें अपने प्रत्येक कर्म को अपना व्यक्तिगत कार्य न मानकर 'भगवत्-कार्य' (भगवान् का कार्य) समझकर करना चाहिए।

इसी भाव को जीवन में उतारने के लिए स्वामी जी सुबह उठकर इस विशेष प्रार्थना को हृदय से आत्मसात् करने का निर्देश देते हैं:

कर प्रणाम तेरे चरणों में,
लगता हूँ अब तेरे काज।
पालन करने को आज्ञा तब,
मैं नियुक्त होता हूँ आज।

यह पद्य केवल शब्द नहीं वरन् शरणागति का मन्त्र है। जब हम श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम कर यह स्वीकार करते हैं कि "आज दिनभर जो भी कार्य मैं करूँगा वह आपका ही कार्य है और मैं आपकी आज्ञा के पालन के लिए नियुक्त हुआ हूँ' तो हमारे कर्म की गुणवत्ता बदल जाती है।

दोषों की निवृत्ति और सच्चिदानन्द की प्राप्ति

जब हम स्वयं को श्रीभगवान् का 'निमित्त' मान लेते हैं तो हमारे कार्यों में होने वाले दोष, अहङ्कार और त्रुटियाँ स्वतः ही समाप्त होने लगती हैं। इस भाव से युक्त होने पर कोई भी अनुचित कार्य हमारे हाथों से हो ही नहीं पाता।

अक्सर यह प्रश्न उठता है कि "यदि सब कुछ ईश्वर को ही करना है तो मेरी क्या आवश्यकता है?" इसका उत्तर यह है कि उस दिव्य योजना को पूर्ण करने के लिए **श्रीभगवान् ने हमें चुना है।**

ईश्वर के महान कार्य में अपना एक छोटा सा 'पुष्प' (योगदान) अर्पित करने का प्रयास ही वास्तविक आनन्द है। जब हम इस समर्पण भाव से कर्म करते हैं तो हमें 'सच्चिदानन्द' की साक्षात् अनुभूति प्राप्त होती है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- विद्यासागर भैया

प्रश्न -हम पढ़ते हैं कि अर्जुन श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय मित्र थे। वे बहुत बड़े राजा थे और श्रीभगवान् के प्रिय शिष्य थे, वे नरोत्तम थे। उन्होंने स्वयं श्रीभगवान् के मुख से गीताजी सुनी हैं। इतना सब होने के बाद भी उन्हें गोलोक की प्राप्ति क्यों नहीं हुई? उन्हें श्रीभगवान् का लोक क्यों नहीं मिला?

उत्तर- श्रीभगवान् के लोक की प्राप्ति करने को इस तरह से समझना चाहिये कि श्रीभगवान् तो यहीं हमारे साथ हैं। मनुष्य को यह ज्ञान हो जाना चाहिये कि यह सारा संसार श्रीभगवान् का ही है। वह यहाँ हमारे साथ ही हैं। इस ज्ञान की अवस्था को प्राप्त करने के लिए हमें भक्ति के मार्ग पर चलना है। हम श्रीभगवान् के ही रूप हैं और उनके साथ एक रूप होने के लिए हमें प्रयत्न करना है।

अर्जुन नहीं जानते थे कि शत्रु पक्ष में खड़े हुए सभी राजा पहले ही समाप्त हो गए थे, वे सब पहले ही मृत्यु को प्राप्त कर चुके थे। श्रीभगवान् यह जानते थे। भगवत् दर्शन करने के लिए हमें अपने जीवन को किस प्रकार बदलना है, हमें यह सीखना चाहिये।

भगवद्गीता हमें श्रीभगवान् के सान्निध्य में रहना सिखाती है। हमें स्वर्ग लोक, नर्क लोक और गो लोक का विचार अपने मन से हटा देना चाहिये। हमें इस डर से ऊपर उठाना चाहिये। यदि श्रीभगवान् का साथ मिल जाता है तो फिर चाहे स्वर्ग लोक है या नर्क लोक कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें सभी कार्य श्रीभगवान् के कार्य समझकर करना चाहिये। यह सोचना नहीं चाहिए कि कुछ अच्छा करने से हमें इह लोक की या गोलोक की प्राप्ति होगी।

हम यह सोचते हैं कि जब हम यह देह छोड़ कर जायेंगे तो हमें दूसरा देह प्राप्त होगा और वहाँ हम श्रीभगवान् के साथ रासलीला में लग जायेंगे। यह सब सोचने की आवश्यकता नहीं है।

हम जो भी कार्य कर रहे हैं, यह भी श्रीभगवान् की रासलीला ही है। यही माया है और इस तरह का विचार रखना इतना आसान भी नहीं है। हम श्रीभगवान् की माया में लिप्त रहते हैं और उन्हें कभी देख नहीं पाते। भगवद्गीता के अध्ययन से श्रीभगवान् को देखने का प्रयास हमें करते जाना है। जब मनुष्य को श्रीभगवान् की अनन्य भक्ति प्राप्त हो जाती है तो उसे श्रीभगवान् के दर्शन होते हैं।

इस अध्याय के अन्त में श्रीभगवान् ने यह बात बताई है कि यह दर्शन किसको होता है? अर्जुन को इस रूप के दर्शन क्यों प्राप्त हुए यह भी समझना जरूरी है। अर्जुन को भगवत् दर्शन हो गए अब उन्हें गोलोक मिले या न मिले उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

यदि श्रीभगवान् ने हमारा हाथ पकड़ लिया है तो हमें किसी बात का डर नहीं रहेगा। श्रीभगवान् अर्जुन को भी यही सिखा रहे हैं कि तुम मेरे साथ रहो फिर देखना कितना आनन्द आएगा।

मुक्ति की अवस्था प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हमें मृत्यु प्राप्त हो। हम जीते जी भी मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं। जीते जी श्रीभगवान् के सान्निध्य का अनुभव अपने शरीर में करना ही मोक्ष है। मोक्ष को मृत्यु के बाद मिलने वाली अवस्था नहीं समझना चाहिये।

प्रश्नकर्ता- कृष्ण राव भैया
प्रश्न- श्रीभगवान् ने अर्जुन को उनके सभी शत्रुओं को अपने मुख में जाते हुए दिखाया। अर्जुन ने देखा कि द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह जयद्रथ, कर्ण और भी बहुत सारे शूरवीर योद्धा भगवान के मुँह में जा रहे हैं फिर उन्हें अभिमन्यु क्यों नहीं दिखाई दिए? अभिमन्यु का भी युद्ध में अन्त होना था तो श्रीभगवान ने अर्जुन को अभिमन्यु को क्यों नहीं दिखाया?
उत्तर - यह भी श्रीभगवान् की कोई लीला ही होगी। यदि अर्जुन अभिमन्यु को मृत्यु को प्राप्त होते देख लेते तो वे कभी भी युद्ध के लिए तैयार नहीं होते इसलिए श्रीभगवान् ने अर्जुन को अभिमन्यु की मृत्यु नहीं दिखाई। श्रीभगवान् जानते हैं कि किसके लिए क्या हितकर है।

प्रश्नकर्ता- सीमा दीदी
प्रश्न- इस अध्याय के तीसरे श्लोक में अर्जुन श्रीभगवान् से उनका ऐश्वर्यशाली, ईश्वरीय रूप देखने की प्रार्थना करते हैं जो ज्ञान, शक्ति, बल और तेज से युक्त है। श्रीभगवान ने अर्जुन को अपना इतना भयावह रूप क्यों दिखाया?
उत्तर - श्रीभगवान् अर्जुन को सच्चाई दिखाना चाहते हैं। यह सारा विश्व श्रीभगवान् का रूप है। इसमें अच्छी घटनाएँ हैं और दुर्घटनाएँ भी हैं।
ये सब श्रीभगवान् का ही रूप है, यह दिखाने के लिए उन्होंने अर्जुन को अपना भयावह विश्वरूप दिखाया।

जब अर्जुन ने श्रीभगवान् से उनकी विभूतियाँ पूछीं तो श्रीभगवान् ने बहुत सुन्दर-सुन्दर विभूतियाँ बताईं। श्रीभगवान् ने अच्छे में अच्छे को देखना पहले सिखाया और सब में उन्हें ही देखना दूसरी बार में सिखाया है। दसवें अध्याय में विभूतियाँ बताई गई हैं और ग्यारहवें अध्याय में यह विश्वरूप आया है।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को यह भयावह रूप उनके मन से मोह और अज्ञान को दूर करने के लिए दिखाया है। हमें भी इसी भाव से इसे देखना है। हम जो हर कार्य के लिए सोचते हैं कि यह मैंने किया या यह मेरे द्वारा किया गया है, वह अनुचित है। इस भाव को समाप्त करना है और जो कुछ भी संसार में हो रहा है वह श्रीभगवान् के ही द्वारा हो रहा है, इस भाव को अपने मन में रखना है।

हम श्रीभगवान् का कार्य करने के लिए सिर्फ निमित्र मात्र हैं। हर कार्य को इस भावना से करना चाहिए कि श्रीभगवान् ने मुझे इस कार्य को करने के लिए चुना है। हर कार्य को करने के बाद उसे श्रीभगवान् को अर्पण कर देना चाहिये। ऐसा करके ही हमें श्रीभगवान् का सच्चा दर्शन होगा।

इस रूप से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यह बात श्रीभगवान् ने अर्जुन को भी बताई है। जो होने वाला है वह अवश्य होगा। यह भाव रखेंगे तो श्रीभगवान् का सान्निध्य मिलेगा।

आज बाईस मार्च दो हजार छब्बीस है और चौबीस मार्च दो हजार छब्बीस को क्या होने वाला है, यह हमें ज्ञात नहीं है।

श्रीभगवान् को यह ज्ञात है क्योंकि वे स्वयं काल हैं। जो अभी हुआ नहीं है वह दृश्य भी उन्होंने अर्जुन को दिखा दिया।

उन्होंने बताया कि "ये सभी लोग समाप्त होने वाले हैं और अर्जुन तुम्हें इसके लिए निमित्त चुना गया है। इन सब का अन्त तुम्हारे द्वारा होगा।" उन्होंने अर्जुन को भविष्य काल दिखाया।

इस के उपरान्त श्रीहनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||